IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

पर्यावरण संरक्षण और हिमालय

डॉ दलीप सिंह बिष्ट
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभाग प्रभारी, राजनीति विज्ञान
अ. प्र. ब. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अगस्त्यमुनि, रुद्रप्रयाग

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" वेद के इस मंत्र में धरती माता की सजल संवदेना का गहरा रहस्य समाया हुआ है। धरती हमारी माता है, वह माँ के समान अपनी संतानों को पोषण, संरक्षण एवं स्नेह प्रदान करती है। इसलिए प्रातःकाल उठकर पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व धरती माता का अभिवादन करते हुए कहा जाता है कि *"समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्ष क्षमस्व मे"*।।[1] समुद्ररूपी वस्त्रों को धारण करने वाली, पर्वतरूपस्तनों से मण्डित भगवान विष्णु की पत्नी पृथ्वी देवि, आप मेरे पाद स्पर्श को क्षमा करें। *"पृथ्वी सगंधा सरसास्तथापः सपर्षी च वायुज्र्वलितं च तेजः। नभः सषब्दं महता सहैव कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्"*।।[2] गंधयुक्त पृथ्वी, रसयुक्त जल, स्पर्शुक्त वायु, प्रज्वलित तेज, शब्दसहित आकाश एवं महत्तत्व, ये सभी मेरे प्रातःकाल को मंगलमय करे। धरती माँ संतान के विकास की सभी प्रक्रियाओं को अपार धैर्य, कुशलता एवं तत्परतापूर्वक पूर्ण करती है। इस प्रक्रिया में किंचित् विलंब भी हमारी सारी गतिविधियों को प्रभावित किए बिना नहीं रहती है, परन्तु संतान की माता के प्रति सत्त एवं क्रूर निर्ममता ऐसी घातक प्राकृतिक विषमताओं का प्रादुर्भाव कर रही है, जो किसी के लिए भी शुभ नही कहा जा सकता है।[3] वन संरक्षण की विचारधारा वर्तमान परिस्थितियों की देन नहीं, अपितु आज से हजारों वर्ष पूर्व भी वनों के संरक्षण पर विचार किया जाता रहा है। जिसका प्रमाण आज से पाँच हजार वर्ष पुरानी सिन्धु घाटी की सभ्यता की एक मुद्रा से मिलता है जिसमें दो विवेकहीन व्यक्तियों को दो वृक्षों को जड़ से उखाड़ते हुए दिखाया गया है। इसके मध्य से वृक्षों का देवता हाथ फैलाते हुए इस विनाश के अन्त की माँग कर रहा है।[4] वर्ष 1730 में जोधपुर (राजस्थान) में 84 गांवों के लोगों ने पेड़ों को काटने के लिए राजा का विरोध किया। राजा के द्वारा पेड़ काटने के लिए भेजे गये कर्मचारियों को पेड़ न काटने के लिए वहाँ की महिलाओं ने पेड़ो से चिपकने का निर्णय लिया, जिसका नेतृत्त्व अमृता देवी कर रही थी। अमृता देवी की राजा के कर्मचारियों द्वारा हत्या कर दी गयी, किन्तु उसकी हत्या के उपरांत अन्य लोगों ने उसका स्थान ले लिया और इस प्रकार पेड़ों को बचाने के लिए 363 व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) शहीद हुए। इसके बाद राजा को अपनी गलती का अनुभव हुआ और उन्होंने आदेश दिया कि भविष्य में पेड़ों को नहीं काटा जाना चाहिए।[5] खेजडली के लोगों के इस महान बलिदान के पीछे 15वीं सदी के विश्नोई पंथ के प्रवर्तक जम्भोजी की प्रेरणा काम कर रही थी। जम्भोजी एक गोपालक किसान था, जब एक बार वहाँ सूखा पड़ा तो सभी किसान अपने घर बार छोड़कर पशुओं को लेकर दूसरे स्थान पर चले गये। किन्तु जम्भोजी ने उसी स्थान पर रूककर इस विषय पर चिंतन किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह प्रकृति के प्रति मनुष्य के क्रूर व्यवहार का दुष्परिणाम है,

फलस्वरूप उन्होंने सदाचार के उन्नतीस नियम बनाए। जिनमें से दो नियम यह भी थे कि कोई पेड़-पौधा नहीं काटना चाहिए व पशु-पक्षियों को नहीं मारना चाहिए। जम्भोजी के पंथ को मानने वाले विश्नोई इन नियमों का पालन करना तथा पेड़-पौधों व वन्य जन्तुओं की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हुए इनकी रक्षा के लिए बलिदान देना अपना धर्म समझते हैं। गढ़वाल में सन् 1970 के दशक में प्रारम्भ किए गए 'चिपको आंदोलन' के द्वारा भी लगभग इन्हीं आदर्शों की पुनरावृति की गई व पेड़ों की रक्षा का संकल्प लिया गया।[6]

भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है कि जो भी हमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से देता है या जीवनोपयोगी है, वह हमारे लिए आदरणीय, अराध्या एवं देवतुल्य हैं। यह सृष्टि पंच-तत्त्वात्मक द्रव्यों से विनिर्मित है और हमारा यह पंचभौतिक शरीर भी पांच महाभूतों (द्रव्यों) से बना हुआ है। ये पंचभूत है; भूमि, आकाश, वायु, अग्नि और जल। अतः कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए वेदों में इनकी स्तुति की गई है तथा उन्हें देवता मानकर धार्मिक भावना के साथ जोड़ा गया है ताकि वे लोक-आस्था का विषय बने रहें। जिससे भावी पीढ़ी उनके संरक्षण एवं संम्बर्द्धन के प्रति विशेष ध्यान दे और उन्हें आदर भाव से देखें। भारतीय मनीषियों ने प्रकृति एवं प्राकृतिक शक्तियों; सूर्य, वायु, वृक्ष, वनस्पति, पृथ्वी, चन्द्रमा, अग्नि आदि को देवता स्वरूप माना।[7] पर्यावरण से जुड़े सभी पदार्थों, वन एवं वनस्पतियों को देवत्व का पद प्रदान कर, उनके प्रति न केवल आदरभाव प्रदर्शित कर, पर्यावरण सुरक्षा को सुनिश्चित आधार प्रदान किया गया है, अपितु उसे धार्मिक आस्था से जोड़कर निरंतर संरक्षण एवं संबर्द्धन का मार्ग भी प्रशस्त किया है।[8] इस प्रकार हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के आदि ग्रंथ ऋग्वेद में जीवन की पूर्णता एवं सुखी-स्वस्थ जीवन के लिए उपयोगी समस्त प्राकृतिक पदार्थों को जीवन के अभिन्न अंग के रूप में निरूपित करते हुए, उनकी मानवीय संदर्भों में उपादेयता प्रतिपादित की गई है। 'पर्यावरण' शब्द का उल्लेख किए बिना, यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि प्राकृतिक पदार्थ हमारे वास्तविक मित्र व जीवनदाता है, उनके अस्तित्व के बिना, धरती पर मानव के अस्तित्व की कल्पना भी नही की जा सकती। अतः वे हमारे लिए हर दृष्टि से उपादेय होने के कारण आदरणीय व वंदनीय हैं। पर्यावरण-संरक्षण एवं पर्यावरण संतुलन की इससे बढ़कर उदात्त कल्पना, वेदो को छोड़कर विश्व के किसी भी साहित्य में देखने को नही मिलती है।[9]

हिमालय देश ही नहीं पूरे विश्व के पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में अहम भूमिका निभाता है। मनुष्य ने सभ्यता के साथ-साथ वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के माध्यम से प्रकृति के हर कार्य को चुनौती के रूप में स्वीकार किया। यही कारण है कि उसने प्रकृति पर विजय पाने का हर सम्भव प्रयास किया और उसके लिए हर सीमा को पार किया। परिणामस्वरूप मनुष्य हिमालय के लिए आज सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। तथाकथित प्रकृति प्रेमी, ट्रैकर, साहसी पर्यटक आदि तमाम लोगों ने हिमालय पर विजय पाने का जो दुःसाहस किया, उसी का परिणाम है कि उसने विश्व की सबसे ऊंची पर्वत श्रृंखला एवरेस्ट पर भी विजय प्राप्त कर ली। हिमालय पर विजय प्राप्त कर भी वह हार गया और प्रकृति हारकर भी जीत गई। मनुष्य ने हिमालय एवं उसके पर्यावरण को जो हानि पहुंचाई है उसका दुष्प्रभाव सबसे अधिक उसको स्वयं उठाना पड़ रहा है, फिरभी वह सत्य को स्वीकार करने को तैयार नही है। फलस्वरूप हिमालय विभिन्न आपदाओं से त्रस्त है जो प्राकृतिक से ज्यादा मानवजनति है, 2013 की केदारनाथ आपदा भी इसी प्रकार की हैं, यानी "*जैसी करनी वैसी भरनी*"। आज दुनिया की सबसे ऊंची पर्वत श्रृंखला एवरेस्ट भी प्रदूषण से अछूती नही रही। गोमुख जैसा ग्लेशियर धीरे-धीरे प्रदूषण का शिकार होता जा रहा है। यही हाल गंगा का भी है जो लोगों का पाप धोते-धोते गंदगी में तब्दील हो गई। हिमालय के पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने में सबसे प्रमुख संसाधन वन है,

जो ना केवल हमारी दिन-प्रतिदिन की आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करता है, बल्कि हिमालय के संरक्षण, संवर्धन एवं वायुमंडल को स्वच्छ बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

हिमालय और उससे निकलने वाली नदियों का महत्व कभी कम नहीं हो सकता है, क्योंकि इनके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। परन्तु हिमालय धीरे-धीरे उपभोग की वस्तु बनता जा रहा है जिसके कारण हिमालय विजय की प्रतिस्पर्धा लगातार बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप, हिमालय से लेकर हमारी नदी, घाटियां कोई भी स्थान प्रदूषण से अछूता नहीं रहा हैं। पहाड़ों में तीर्थयात्री, पर्यटकों आदि के बढ़ने के कारण सड़कों का चौड़ीकरण, नये-नये होटलों का निर्माण आदि कार्य लगातार गतिमान है जिससे भूस्खलन, पहाड़ों का दरकना आदि घटनायें बढ़ती जा रही हैं। यही नहीं विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के कारण तापमान की बढ़ोतरी से ग्लिशियरों से वर्फ कम होती जा रही है और मौसमी परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखने को मिल रहा है। इसके साथ ही बांध निर्माण एवं सड़क निर्माण के कार्यों से निकल रहा मलवा नदियों में प्रभाहित करने से वर्षात में आपदा का कारण बनता जा रहा है। नदियों को बांधने से गंगा प्रदूषित एवं मृत प्रायः सी हो गई है, कहीं सरस्वती की तरह गंगा भी इतिहास के पन्नों में दफन होकर न रह जाय।

पर्वतीय क्षेत्रों में वृक्षों के अत्यधिक कटान से यहां की उपजाऊ मिट्टी अपना टिकाऊ धरातल नदियों के साथ बहा ले जाती है। छोटी-छोटी गहरी व निर्मल नदियों के पाट बड़ी तीव्रता से चैड़े होते जा रहे हैं। साथ ही बाढ़ की दशाओं में तबाही से अनेकों गांवों को नुकसान सहना पड़ रहा है। पृथ्वी और प्राकृतिक शक्तियों के बीच संतुलन पर मानव का अस्तित्व निहीत है यदि प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाए तो हमारा अस्तित्व काल के महाप्रभाव में विलीन हो जाएगा, कदाचित इसी को ध्यान में रखते हुए आर्य मनीषियों ने अपनी वाणी में धरती और उसकी प्राकृतिक सम्पदाओं के संरक्षण का संदेश दिया है प्रकृति और मानव के प्रगाढ तारतम्यता की अवधारणा भारतीय बाङमय में विराट रूप में दर्शनीय है।[10]

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी संतुलन के लिए वन्य प्राणियों की सुरक्षा पर समुचित ध्यान दिया जाना आवश्यक है, जिससे प्राकृतिक संतुलन बना रहे। इस दिशा में प्रकृति प्रदत्त सभी वस्तुयें हमारी सहायता करते हैं अपने अनुकूल पर्यावरण को पाकर उनकी संख्या में वृद्धि होती है कुल मिलाकर अच्छी देखरेख व उचित नियंत्रण के माध्यम से राष्ट्रीय पार्कों का निर्माण पर्वतीय अंचलों में भी समयानुसार होते रहना चाहिए। किन्तु जिस प्रकार से केदारनाथ यात्रा में हवाई जहाजों का प्रयोग किया जा रहा है तथा सड़क मार्ग से आने वाले यात्रियों द्वारा अपने वाहनों पर तेज ध्वनि के हार्न का प्रयोग किया जा रहा है उससे जैव-विविधता को बहुत क्षति पहुंचती है। यही कारण था कि कभी हमारे पूर्वजों ने ऊंची पहाड़ियों, बुग्यालों में रंगीन कपड़े और तेज आवाज करने पर परियों/आछरियों का भय दिखाकर उसे संरक्षित करने का कार्य किया था। प्राकृतिक सम्पदा द्वारा मानव जीवन खुशहाल तथा समृद्ध होता है उसके द्वारा प्रदान की गई विपुल सम्पदा के आगे मानव का अस्तित्व अधूरा है चारागाह, नदियों के दोआब, हरी-भरी घाटियां, वन आदि अपने नैसर्गिक स्वरूप को खोते जा रहे हैं। प्रकृति का अपना अलग मौलिक सौन्दर्य है जिसमें असीम शक्ति है इसके साथ समन्वय स्थापित कर जीवन और संसार में समरसता लाई जा सकती है, परन्तु आज मानव के हस्तक्षेप से सौंदर्यकरण की भावना आधुनिकता की भेंट चढ़ गई है, अतः प्राकृतिक सम्पदा के खजाने की प्राप्ति इस अमूल्य वैभव को मानव जीवन के लिए अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिए क्रियाशील रहना होगा।

प्रकृति, पर्यावरण और मनुष्य के बीच सम्बन्ध सूत्र स्थापित होने के साथ ही संस्कृति का उदय हुआ। उसके निकट सम्बन्ध बनते ही भूमि, पर्वत, नदी, वन, वनस्पति, पशु-पक्षियों आदि के साथ उसके मन का सम्बन्ध बना और उनके साथ जुड़कर जीविका, आवास, खानपान और श्रम का स्वरूप निर्धारित हुआ और उसने अपने लिए एक दूसरी ही दुनिया का निर्माण कर दिखाया, जिससे पर्यावरण के प्रति उसका अनुकूलन का भाव बढ़ा। प्रकृति और पर्यावरण के रहस्य खुलते गए, साथ ही देवत्व का भाव भी विकसित हुआ, सब में एक ही ब्रह्म को, एक ही विश्वात्मा को देखने का भाव विकसित हुआ। हमारे पूर्वजों ने पृथ्वी, जल, वायु, वनस्पति तथा जीवों की महत्ता को आर्थिक और धार्मिक संदर्भ में पहचानने का प्रयास किया। वेदांत में प्रकृति और मानव के बीच की मौलिक एकता को देखा। अप्रत्यक्ष रूप से वह इस सत्य पर पहुंचा कि सारा ब्रह्माड और उसमें रहने वाले जीव एवं अन्य प्राकृतिक तत्व सब एक-दूसरे से बंधे हुए हैं।

हमारे समाज में सभी जीव-जन्तुओं को जैसे; सांप, चूहा, छिपकली, शेर, कुत्ता, गाय, सूअर, गरुड़ आदि को किसी न किसी देवी-देवता से जोड़ा गया है और उन्हें मारना पाप माना गया। क्योंकि पर्यावरण संतुलन के लिए सभी जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों का होना आवश्यक है और उनके संरक्षण के लिए इससे अच्छा उपाय नही हो सकता था। जल को विष्णु का प्रतीक मानकर पूजा जाता है क्योंकि जल में विष्णु का वास होता है। पहाड़ों में सभी जगह पानी की आपूर्ति हेतु प्राकृतिक जल स्रोत होते हैं जिन्हें धारा-नौला कहा जाता है। इसमें कपड़े धोना, गंदे बर्तन, गंदे कपड़े, साबुन डालना एवं इसके निकट मलमूत्र त्यागना वर्जित होता है। पूजा तथा मांगलिक कार्यों के बाद मूर्ति अथवा कलवा विसर्जन जलस्रोत के बाहर किया जाता है। यह मान्यतायें मात्र अंधविश्वास या रूढ़ियां नही हैं बल्कि इनके पीछे वैज्ञानिक प्रमाण हैं जिससे पर्यावरण प्रदूषण न हो।

सांस्कृतिक पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में संस्कृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है क्योंकि व्यक्ति का सुसंस्कृतिक स्वरूप ही सांस्कृतिक चेतना लाने में सक्षम है। संस्कृत का अर्थ व्यक्ति का भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति है। एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार और दूसरे को समझने का ज्ञान संस्कृत से मिल पाना सम्भव है। संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में, कला में, साहित्य में, धर्म में, विचारों के तरीकों में, हमारी संस्कृति की अभिव्यक्ति है। संस्कृति ही जीवन के बाहय और आन्तरिक संस्कार का क्रम है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला नैतिकता के सिद्धांत, विधि-विधान, प्रथायें तथा ऐसे अन्य बातें सम्मिलित हैं, जिन्हें व्यक्ति समाज के सदस्य के रूप में ग्रहण करता है।11

विश्व संस्कृति में नदियों को ही नहीं सागर को भी गौरव प्राप्त है विष्णु का क्षीर सागर-वास और समुद्र मंथन की पौराणिक गाथा प्रसिद्ध हैं आज वैज्ञानिक समुद्र को अनेक उपयोगी उपादानों का भंडार मानते हैं हमारे यहां समुद्र की एक संज्ञा रत्नाकर है हमारी नदियां नौकायान की साधन रही है और उन पर पुल बांधने, पनचक्कियां लगाने पर सभ्यता के चरण आगे बढ़े हैं। उसी प्रकार समुद्र जहाजरानी के लिए आर्थिक, व्यापारिक और यातायात के क्रियाकलापों पर हावी रहा है। समुद्र में रसायन, औषधय द्रव्य, उर्जा, धातुयें सभी कुछ निहीत हैं। समुद्र के पानी में सोडियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटेशियम, सल्फर, लवण आदि तत्व विद्यमान है जो बेशकीमती होने के कारण उपयोग की पूरी सम्भावनायें लिए हुए हैं।[12]

वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास ने जहां प्रकृति के शोषण को अति सरल एवं सुगम बना दिया है वहीं कृषि भूमि की कमी, पेयजल की समस्या, वनों के ह्रास ने एक नई अशांति को जन्म दिया है। ऐसी स्थिति में हिमालय जो न केवल देश के लिए

सुरक्षा कवच के रूप में कार्य कर रहा है वरन जलवायु, जल एवं ऑक्सीजन की आवश्यकता को भी पूरा करता है और उसका प्रदूषित होना एक बड़ी समस्या है। अविवेकपूर्ण विकास के बढ़ने से एक ओर वनों का क्षेत्र घट रहा है तो दूसरी ओर जंगली जानवर आतंक का पर्याय बनते जा रहे हैं। खाद्य सामग्री यानी शिकार की कमी के कारण बाघ जैसा खतरनाक शिकारी रिहाशी एवं शहरी क्षेत्रों की ओर आने लगा है और यह सब मनुष्य द्वारा जंगलों में अतिक्रमण का परिणाम है।

वस्तुतः पहाड़ के किसी भी धार-खाल, गाड-गदेरे, नदी-नाले में चले जाये, रंग-बिरंगी पालीथीन की थैलियां, पानी एवं ठंडे की बोतलें जहां-तहां बिखरी नजर आ जायेंगी। यही नही धार्मिक स्थलों के चारों ओर जहां-तहां प्लास्टिक बिखरा मिल जायेगा। इससे स्पष्ट है कि आज कोई भी स्थान ऐसा नही है जहां प्लास्टिक कचरा न पहुंच पाया हो। जिन लोगों पर इस कचरे को रोकने की जिम्मेदारी है वही लोग अपने सम्मेलनों, संगोष्ठियों में प्रदूषण पर तो खूब चर्चा करते हैं परन्तु इन्हीं कार्यक्रमों में प्लास्टिक की वस्तुओं का खूब इस्तेमाल किया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे में प्लास्टिक कचरा रूक पायेगा? कुछ दिन के हो हल्ले के बाद सभी चीजें कुछ समय बाद अपने पुराने ढरे में आ जाती है। गंगा नदी के विषय में कहा गया है कि *"गंगा तव दर्शनात मुक्ति"*। वही गंगा आज शहरों का मलमूत्र, फैक्ट्रियों का कचरा एवं यात्रियों द्वारा फेके गये कचरे को ढोते-ढोते उस सीमा तक प्रदूषित हो गई है कि उसका पानी पीना तो दूर, आचमन करने लाइक भी नही रहा है। हिमालय और गंगा के अस्तित्व पर ही हम सबका अस्तित्व निर्भर करता है। कहीं हिमालय बचाओ की शपथ और नमामि गंगे अभियान भी औपचारिकता बनकर न रह जाय और यमुना की तरह तेरा प्रदूषण, उसका प्रदूषण के पेंच में फंसकर न रह जाय। वस्तुतः जो आज मात्र समस्या नजर आ रही है कल त्रासदी बनकर तबाही का कारण न बन जाए, इस पर गहनता से चिंतन कर कार्य करने की आवश्यकता है।

1. वर्तमान समय में तीर्थस्थलों को पर्यटक स्थलों के रूप में इस्तेमाल किया जाने लगा हैं जिसके कारण भौतिकतावादी सोच जोर पकड़ने लगी है।

2. बद्रीनाथ-केदारनाथ, यमनोत्री-गंगोत्री, हेमकुण्ड साहिब आने वाले यात्री जिस प्रकार अपने वाहनों में विभिन्न प्रकार की तेज ध्वनियों का इस्तेमाल कर रहे है तथा हवाई जहाज की ध्वनि से शांत वादियां ध्वनि प्रदूषण से प्रभावित हो रही हैं जिसका दुष्प्रभाव जैव-विविधता पर पड़ रहा है।

3. रास्तों में जहां-तहां गाडियां लगाकर जोर के साउंड बजाकर शराबखोरी जैसी अव्यवस्था लगातार खूब फल-फूल रही है जो दुघर्टनाओं के साथ-साथ यहां की संस्कृति एवं पारिस्थितिकी तंत्र को भी तहस-नहस कर रहा है।

4. तीर्थयात्रा/पर्यटन/साहसिक पर्यटन आदि को अलग-अलग कर उसकी एक स्पष्ट नीति बनाई जानी चाहिए, जिससे हुड़दंगी तीर्थयात्रियों/पर्यटकों पर प्रतिवन्ध लगाया जा सके।

5. सरकार प्लास्टिक वस्तुओं पर प्रतिबन्ध लगाने की बात तो करती है परन्तु स्वयं सरकारी कार्यक्रमों में प्लास्टिक की बोतलों का धडल्ले से इस्तेमाल किया जाता है। पानी की बोतलें हो या ठंडे की बोतले वह किसी भी कार्यक्रम के बाद जहां-तहां बिखरी पड़ी रहती हैं जिससे पहाड़ भी अछूते नही है। ऐसे में प्लास्टिक पर प्रतिवन्ध एक बेमानी लगती है।

6. राज्य में तीर्थाटन/पर्यटन की कोई स्पष्ट नीति न होने के कारण ये दोनों को एकसमान रूप से देखा जाता हैं, जिससे अव्यवस्था का अम्बार लगना स्वाभाविक ही है।

सन्दर्भः

1. मिश्र, लालबिहारी;सं0 2062: *नित्यकर्म-पूजाप्रकाश,* गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ-2
2. मिश्र, लालबिहारी;सं0 2062: *नित्यकर्म-पूजाप्रकाश,* गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ-9
3. *अखण्ड ज्योति,* वर्ष-70, अंक-7, जुलाई, 2006, अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा, पृष्ठ-23
4. पाण्डे, रमेश; 1994: वन पंचायतें, भुवनेश्वरी महिला आश्रम, अंजनीसैंण, टिहरी गढ़वाल, पृष्ठ-125.
5. Venkateswaran, Sandhya; 1995 : ***Environment Development and the gender gap,*** Sage Pub. New Delhi, P-78
6. पाण्डे, रमेश; 1994: *वन पंचायतें,* भुवनेश्वरी महिला आश्रम, अंजनीसण, टिहरी गढ़वाल, पृष्ठ-125-126
7. सती, वी0 पी0; 2000: *पर्यावरण और प्रदूषण,* पोइन्टर पब्लि0 जयपुर राजस्थान, पृष्ठ-20
8. सती, वी0 पी0; 2000: *पर्यावरण और प्रदूषण,* पोइन्टर पब्लि0 जयपुर राजस्थान, पृष्ठ-26
9. सती, वी0 पी0; 2000: पर्यावरण और प्रदूषण, पोइन्टर पब्लि0 जयपुर राजस्थान, पृष्ठ-29
10. अग्रवाल, सी. एच.;1998: *पर्यावरणः कुछ विचार,* नित्यानंद मिश्र, शिवचरण पाण्डे, पर्यावरण संस्कृति, प्रदूषण एवं संरक्षण, अल्मोड़ा बुक डिपो, नित्यानंद मिश्र पृष्ठ-45-46
11. जोशी, ललित मोहन; 1998: *पर्यावरण का सांस्कृतिक मूल्यांकन,* नित्यानंद मिश्र, शिवचरण पाण्डे, पर्यावरण संस्कृति, प्रदूषण एवं संरक्षण, अल्मोड़ा बुक डिपो, पृष्ठ-50
12. चातक, गोविन्द; 1998: *पर्यावरण, परम्परा और संस्कृति का सृजन,* नित्यानंद मिश्र, शिवचरण पाण्डे, पर्यावरण संस्कृति, प्रदूषण एवं संरक्षण, अल्मोड़ा बुक डिपो, पृष्ठः135